

कर्मैव कार्मणं शरीरम्, अष्टकर्मस्कन्ध इति यावत् । अथवा कर्मणि भवं कार्मणं शरीरम् , नामकर्मावयवस्य कर्मणो ग्रहणम् । तेन योगः कार्मणकाययोगः । केवलेन कर्मणा जनितवीर्येण सह योगः इति यावत् । उक्तं च---

कम्मेव च कम्म-भवं कम्मइयं तेण जो दु संजोगो ।

कम्मइयकायजोगो एग-विग तिगेसु समएसु१ (प्रा. पं. १. ९९.। गो. जी. २४१. स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्धातसंबंधिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तु शब्देन सूच्यते । अनेन शेषयोगानामव्याघातविषय अन्तर्मुहूर्त्तकालो व्याघातविषये एकसमयादियथासम्भवांतर्मुहूर्त्तपर्यंतकालश्चएकजीवं प्रति भणितो भवति । नानाजीवापेक्षया उवसमसुहमेत्याद्यष्टसांतरमार्गणावर्जितशेषनिरंतरमार्गणानां सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः । जी. प्र. टी. १६६

केवौदारिककाययोगो २ (मु. को. ह्यौदारिक ।)भवतीत्येतत्प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो तिरिक्ख-मणुस्साणं ५७

देवनारकाणां किमित्यौदारिकशरिरोदयो न भवेत् ? न, स्वाभाव्याद्,

-----

कर्म ही कार्मणशरीर है, अर्थात् आठ प्रकारके कर्मस्कन्धोंको कार्मणशरीर कहते हैं । अथवा कर्ममें जो शरीर उत्पन्न होता है उसे कार्मण शरीर कहते हैं । इससे नामकर्मके अवयवरूप कार्मणशरीरका ग्रहण होता है । उस शरीरके निमित्तसे जो योग होता है उसे कार्मणकाययोग कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि अन्य औदारिकादि शरीर- वर्गणाओंके विना केवल एक कर्मसे उत्पन्न हुए वीर्यके निमित्तसे आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूप जो प्रयत्न होता है उसे कार्मण- काययोग कहते हैं । कहा भी है---

ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मस्कन्धको ही कार्मणशरीर कहते हैं । अथवा, नामकर्मसे जो उत्पन्न होता है उसे कार्मणशरीर कहते हैं । और उसकेद्वारा होनेवाले योगको कार्मणकाययोग कहते हैं । यह योग एक, दो अथवा तीन समयतक होता है १६६

औदारिककाययोग किन जीवोंके होता है इस बातके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं---

तिर्यच और मनुष्योंके औदारिककाययोग और औदारिकमिश्रकाययोग होता है<sup>५७</sup>  
शंका--देव और नारकियोंके औदारिकशरीर नामकर्मका उदय क्यों नहीं होता है?  
समाधान--नहीं, क्योंकि, स्वभावसे ही उनके औदारिकशरीर नामकर्मका उदय

-----  
देवनरकगतिकर्मोदयेन सह औदारिककर्मोदयस्य विरोधाद्वा । न च तिरश्चां मनुष्याणां  
चौदारिककाययोग एवेति नियमोऽस्ति, तत्र कार्मणकाययोगादीनामभावापत्तेः । किं तु  
औदारिककाययोगस्तिर्यङ्मनुष्याणामेव ।

केषु वैक्रियककाययोगो भवतीत्येतत्प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

वेऽव्वियकायजोगो वेऽव्विमिस्सकायजोगो देवणेरइ - याणं<sup>५८</sup>

तिरश्चां मनुष्याणां च किमिति तदुदयो न भवेत् ? न, तिर्यङ्मनुष्यगति-कर्मोदयेन सह  
वैक्रियकोदयस्य विरोधात्स्वभावाद्वा न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः अतिप्रसङ्गात् तिर्यञ्चो मनुष्याश्च  
वैक्रियकशरीराः श्रूयन्ते तत्कथं घटत इति चेन्न, औदारिकशरीरं द्विविधं विक्रियात्मकमविक्रियात्मकमिति ।  
तत्र यद्विक्रियात्मकं तद्वै---

-----  
नहीं होता है। अथवा, देवगति और नरकगति नामकर्मके उदयके साथ औदारिकशरीर नामकर्मके उदयका  
विरोध है, इसलिये उनके औदारिक शरीरका उदय नहीं पाया जाता है। फिर भी तिर्यच और मनुष्योंके  
औदारिक और औदारिकमिश्रकाययोग ही होता है ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, इस प्रकारके नियम करने  
पर तिर्यच और मनुष्योंमें कार्मणकाययोग आदिके अभावकी आपत्ति आ जायगी। किन्तु औदारिक और  
औदारिकमिश्र तिर्यच और मनुष्योंके ही होता हैं, ऐसा नियम जानना चाहिये ।

वैक्रियक काययोग किन जीवोंमें होता है इस बातके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं-

देव और नारकियोंके वैक्रियककाययोग और वैक्रियकमिश्रकाययोग होता है<sup>५८</sup>

शंका--तिर्यच और मनुष्योंके वैक्रियकशरीरका उदय क्यों नहीं होता है?

समाधान--नहीं, क्योंकि, तिर्यचगति और मनुष्यगति कर्मोदयके साथ वैक्रियक नामकर्मके उदयका  
विरोध आता है, अथवा, तिर्यच और मनुष्यगतिमें वैक्रियक नामकर्मका उदय नहीं होता है, यह स्वभाव ही

है। और स्वभाव दूसरेके प्रश्नोंके योग्य नहीं होते हैं, अन्यथा, अतिप्रसंग दोष आ जायगा। इसलिये तिर्यच और मनुष्योंके वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्रकाययोग नहीं होता है, यह सिद्ध हो जाता है।

शंका--तिर्यच और मनुष्य भी वैक्रियिकशरीरवाले सुने जाते हैं, इसलिये यह बात कैसे घटित होगी?

समाधान--नहीं, क्योंकि, औदारिकशरीर दो प्रकारका है, विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक<sup>६</sup> उनमें जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है, वह मनुष्य और तिर्यचोंके

-----

क्रियिकमिति तत्रोक्तम्, न तदत्र परिगृह्यते, विविधगुणद्धयभावात् । अत्र विविध गुणद्धयात्मकं परिगृह्यते, तच्च देवनारकाणामेव ।

आहारशरीरस्वामिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो संजदाणमिद्धिपत्ताणं<sup>६</sup>५९

आहारद्धिप्राप्तेः किमु संयताः ऋद्धिप्राप्ता उत वैक्रियिकद्धिप्राप्तेस्ते १ (मु. वैक्रियिकद्धिप्राप्तास्ते. ) ऋद्धिप्राप्ता इति । किं चातः, नाद्यः पक्ष आश्रयणयोग्यः, इतरेतराश्रयदोषासंजनात् । कथम् ? यावन्नाहारद्धिरुत्पद्यते न तावत्तेषामृद्धिप्राप्तत्वम्, यावन्नद्धिप्राप्तत्वं न तावत्तेषामाहारद्धिरिति । न द्वितीयविकल्पोऽपि, ऋद्धेरुपर्युद्धयभावात् २ (मु. ऋद्धेरुपर्युद्धयभावात् ।) भावे वा आहारशरीरवतां मनः पर्ययज्ञानमपि जायेत, विशेषाभावात् । न चैवम, आर्षेण ३ (मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा । एदेसु एक्कपगदे णत्थि ति असेसयं जाणे<sup>६</sup>गो. जी. ७३०) सह

-----

वैक्रियिकरूपसे कहा गया है। उसका यहां पर ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि, उसमें नाना गुण और ऋद्धियोंका अभाव है। यहां पर नाना गुण और ऋद्धियुक्त वैक्रियिकशरीरका ही ग्रहण किया है, और वह देव और नारकियोंके ही होता है।

अब आहारकशरीरके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ऋद्धिप्राप्त छटे गुणस्थानवर्ती संयतोंके ही होते हैं<sup>६</sup>५९

शंका--यहां पर क्या आहारक ऋद्धिकी प्राप्तिसे संयतोंको ऋद्धिप्राप्त समझना चाहिये, या वैक्रियिक ऋद्धिकी प्राप्तिसे उन्हें ऋद्धिप्राप्त समझना चाहिये ? इन दोनों पक्षोंमेंसे प्रथम पक्ष तो ग्रहण

करने योग्य नहीं है, क्योंकि, प्रथम पक्षके ग्रहण करने पर इतरेतराश्रय दोष आता है। वह कैसे आता है, आगे इसीको स्पष्ट करते हैं, जबतक आहारक ऋद्धि उत्पन्न नहीं होती है तबतक उन्हें ऋद्धिप्राप्त नहीं माना जा सकता, और जबतक वे ऋद्धिप्राप्त न हों तबतक उनके आहारक ऋद्धि उत्पन्न नहीं हो सकती है। इसी प्रकार दूसरा विकल्प भी नहीं बनता है, क्योंकि, एक ऋद्धिके उपयोग करते समय दूसरी ऋद्धियोंकी उत्पत्तिका अभाव है। इतने पर भी यदि एक ऋद्धिके रहते हुए दूसरी ऋद्धिका **संवाद** माना जाता है, तो आहारक ऋद्धिवालोंके मनः पर्ययज्ञानकी उत्पत्ति भी माननी चाहिये, क्योंकि, दूसरी ऋद्धियोंके समान इसके होनेमें कोई विशेषता नहीं है। परंतु आहारक ऋद्धिवालेके मनःपर्यय ज्ञान माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर आगमसे विरोध आता है?

समाधान प्रथम पक्षमें जो इतरेतराश्रय दोष दिया है, वह तो आता नहीं है,

विरोधादिति ? नादिपक्षोक्तदोषः समाढौकते , यतो नाहारर्द्धिरात्मानमपेक्ष्योत्पद्यते, स्वात्मनि क्रियाविरोधात् । अपि तु संयमातिशयापेक्षया तस्याः समुत्पत्तिरिति । ऋद्धिप्राप्तसंयतानामिति विशेषणमपि घटते । तदनुत्पत्तावपि ऋद्धिहेतुसंयमः ऋद्धिः, कारणे कार्योपचारात् । ततश्चर्द्धिहेतुसंयमप्राप्ताः यतयः ऋद्धिप्राप्तास्तेषामाहारर्द्धिरिति सिद्धम् । संयमविशेषजनिताहारशरीरोत्पादनशक्तिराहारर्द्धिरिति वा नेतरेतराश्रयदोषः । न द्वितीयविकल्पोक्तदोषोऽपि, अनभ्युपगमात् । नैष नियमोऽप्यस्त्येकस्मिन्नकमेण नर्द्धयो भूयस्यो भवन्तीति, गणभृत्सु सप्तानामपिऋद्धीनामक्रमेण सत्त्वोपलम्भात् । आहारर्द्धया सह मनःपर्ययस्य विरोधो दृश्यत इति चेद्भवतु नाम दृष्टत्वात् । न चानेन विरोध इति सर्वाभिर्विरोधो वक्तुं पार्यते, अव्यवस्थापत्तेरिति ।

कार्मणशरीरस्वामिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

कम्मइयकायजोगो विग्गहगइ- समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद - गदाणं ६०

क्योंकि, आहारक ऋद्धि स्वरःकी अपेक्षा करके उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि, अपनेमें क्रियाके होनेमें विरोध आता है। किंतु संयमातिशयकी अपेक्षा आहारक ऋद्धिकी उत्पत्ति होती है, इसलिये ' ऋद्धिप्राप्तसंयतानाम्' यह विशेषण भी बन जाता है। यहां पर दुसरी ऋद्धियोंके उत्पन्न नहीं होने पर भी कारणमें कार्यके उपचारसे ऋद्धिके कारणभूत संयमको ही ऋद्धि कहा गया है, इसलिये ऋद्धिके कारणरूप

संयमको प्राप्त संयतोको ऋद्धिप्राप्त संयत कहते हैं, और उनके आहारक ऋद्धि होती है, यह बात सिद्ध हो जाती है। अथवा, संयमविशेषसे उत्पन्न हुई आहारकशरीरके उत्पादनरूप शक्तिको आहारक ऋद्धि कहते हैं, इसलिये भी इतरेतराश्रय दोष नहीं आता है। इसी प्रकार दूसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी नहीं आता है, क्योंकि, एक ऋद्धिके साथ दूसरी ऋद्धियां नहीं होती हैं, यह हम मानते ही नहीं हैं<sup>६</sup> एक आत्मामें युगपत् अनेक ऋद्धियां उत्पन्न नहीं होती हैं, यह कोई नियम नहीं है, क्योंकि, गणधरोंके एकसाथ सातों ही ऋद्धियोंका सद्भाव पाया जाता है।

शंका--आहारक ऋद्धिके साथ मनःपर्ययज्ञानका तो विरोध देखा जाता है ?

समाधान--यदि आहारक ऋद्धिके साथ मनःपर्ययज्ञानका विरोध देखनेमें आता है तो रहा आवे । किंतु मनःपर्ययके साथ विरोध है, इसलिये आहारक ऋद्धिका दूसरी संपूर्ण ऋद्धियोंके साथ विरोध है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। अन्यथा अव्यवस्थाकी आपत्ति आ जायगी ।

अब कार्मणशरीरके स्वामीके प्रतिपादन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतियोंके जीवोंके तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्धातको प्राप्त केवलीजिन के कार्मणकाययोग होता है<sup>६ ६०</sup>

विग्रहो देहः, तदर्था गति : विग्रहगतिः । औदारिकादिशरीरनामोदयात्स्व-निर्वर्तनसमर्थान् विविधान् पुद्गलान् गृह्णाति विगृह्णातेऽसौ संसारिणा इति वा विग्रहो देहः । विग्रहाय गति : विग्रहगतिः । अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहः व्याघातः पुद्गलादान-निरोध इत्यर्थः । विग्रहेण पुद्गलादाननिरोधेन गति : विग्रहगतिः । अथवा विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यनर्थान्तरम् । विग्रहेण कौटिल्येन गतिः विग्रहगतिः १(त. रा. वा. २. २५. १-३.) । तां सम्यगापन्ना : प्राप्ताः विग्रहगतिसमापन्नाः, तेषां विग्रहगतिसमापन्नानाम् । शरीराणि यतः प्ररोहन्ति तब्दीजभूतं कार्मणशरीरं कार्मणकाय इति भण्यते । वाङ्मनःकायवर्गणानिमित्तः आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगो भवति । कार्मणकायकृतो योगः कार्मणकाययोगः । स विग्रहगतौ वक्रगतौ वर्तमानजीवानां भवति । एतदुक्तम् गतेर्गत्यन्तरं व्रजतां प्राणीनां चतस्त्रो गतयो भवन्ति इषुगतिः पाणिमुक्ता लाङ्गलिका गोमूत्रिका चेति । तत्राविग्रहा प्राथमिकी, शेषाः विग्रहवत्यः । ऋज्वी गतिरिषुगतिरैकसमयिकी । यथा पाणिना तिर्यक्प्रक्षिप्तस्य द्रव्यस्य गतिरेकविग्रहा गतिः तथा संसारिणामेकविग्रहा गतिः पाणिमुक्ता द्वैसमयिकी । यथा लाङ्गलं द्विवक्रं तथा द्विविग्रहा गतिर्लाङ्गलिका

-----

विग्रह देहको कहते हैं। उसके लिये जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं<sup>६</sup> यह जीव औदारिक आदि शरीर नामकर्मके उदयसे अपने अपने शरीरकी रचना करनेमें समर्थ नाना प्रकारके पुद्गलोंको ग्रहण करता है, अथवा संसारी जीवके द्वारा शरीरका ग्रहण किया जाता है, इसलिये देहको विग्रह कहते हैं। ऐसे विग्रह अर्थात् शरीरके लिये जो गति है उसे विग्रहगति कहते हैं अथवा, 'वि' शब्दका अर्थ विरुद्ध और 'ग्रह' शब्दका अर्थ घात होनेसे विग्रह शब्दका अर्थ व्याघात है जिसका अर्थ पुद्गलोंके ग्रहण करनेका निरोध होता है। इसलिये विग्रह अर्थात् पुद्गलोंके ग्रहण करनेका निरोध होता है<sup>६</sup> इसलिये विग्रह अर्थात् पुद्गलोंके ग्रहण करनेके निरोधके साथ जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। अथवा, विग्रह व्याघात और कौटिल्य ये पर्यायवाची नाम हैं। इसलिये विग्रहसे अर्थात् कुटिलता (मोड़ों) के साथ जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। उसको भली प्रकारसे प्राप्त जीव विग्रहगतिसमापन्न कहलाते हैं। उनके अर्थात् विग्रहगतिको प्राप्त जीवोंके कार्मण-काययोग होता है। जिससे संपूर्ण शरीर उत्पन्न होते हैं, उस बीजभूत कार्मणशरीरको कार्मणकाय कहते हैं। वचनवर्गणा, मनोवर्गणा और कायवर्गणाके निमित्तसे जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द होता है उसे योग कहते हैं। कार्मणकायसे जो योग उत्पन्न होता है उसे कार्मणकाययोग कहते हैं। वह विग्रहगति अर्थात् वक्रगतिमें विद्यमान जीवोंके होता है। आगममें ऐसा कहा है कि एक गतिसे दूसरी गतिको गमन करनेवाले जीवोंके चार गतियां होती हैं, इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिकागति। उनमें पहली गति विग्रहरहित होती है और शेष गतियां विग्रहसहित होती हैं। सरल अर्थात् धनुषसे छुटे हुए बाणके समान मोड़ारहित गतिको इषुगति

-----

त्रैसमयिकी । यथा गोमूत्रिका बहुवक्र तथा त्रिविग्रहा गतिर्गोमूत्रिका चातुःसमयिकी१ (त. रा. वा. २. २८. वा. ४.) । तत्र कार्मणकाययोगः स्यादिति । स्वस्थितप्रदेशादार २(लोकमध्यादारभ्य स. सि. २. २६. । त. रा . वा. २. २६। अड्डपएसो रुयगो तिरियं लोयस्स मज्झयारम्मि । एस पभवो दिसाणं एसेव भवे अणूदिसाणं । आचा. नि. ४२.) भ्योर्ध्वाधस्तिर्यगाकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पङ्क्तिः श्रेणिरित्युच्यते । तथैव जीवानां गमनं नोच्छ्रेणिरू पेण । ततस्त्रिविग्रहा गतिर्न विरुद्धा जीवस्येति ।

घातनं घातः स्थित्यनुभवयोर्विनाश इती यावत् । कथमनुक्तमनधिकृतं चावगम्यत इति चेन्न,  
प्रकरणवशात्तदवगतेः । उपरि घातः उद्धातः, समीचीन उद्धातः समुद्धातः ३ (मूलसरीरमच्छंडिय उत्तरदेहस्स  
जीवपिंडस्स । णिग्गमणं देहादो होदि समुग्धादणा मं तु ९ गो. जी. ६६८.) । कथमस्य घातस्य  
समीचीनत्वमिति चेन्न, भूयः कालनिष्पाद्यमान

कहते हैं । इस गतिमें एक समय लगता है । जैसे हाथसे तिरछे पैके गये द्रव्यकी एक मोड़ेवाली गति होती है, उसी प्रकार संसारी जीवोंके एक मोड़ेवाली गतिको पाणीमुक्ता गति कहते हैं । यह गति दो समयवाली होती है । जैसे हलमें दो मोड़े होते हैं, उसी प्रकार दो मोड़ेवाली गतिको लांगलिका गति कहते हैं । यह गति समयवाली होती है । जैसे गायका चलते समय मूत्रका करना अनेका मोड़ोंवाला होता है, उसी प्रकार तीन मोड़ेवाली गतिको गोमूत्रिका गति कहते हैं । यह गति चार समयवाली होती है । इन तीनों विग्रहगतियोंमें प्रत्येक गतिके अन्तिम समयको छोड़कर कर्मणकाययोग होता है ।

जो प्रदेश जहां स्थित हैं वहांसे लेकर ऊपर , नीचे और तिरछे क्रमसे विद्यमान आकाशप्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणी कहते हैं । इस श्रेणीके द्वारा ही जीवोंका गमन होता है, श्रेणीको उल्लंघन करके नहीं होता है । इसलिये विग्रहगतिवाले जीवके तीन मोड़ेवाली गति विरोधको प्राप्त नहीं होती है । अर्थात् ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहा पर पहुँचने के लिये चार मोड़े लग सकें ।

घातनेरूप धर्मको घात कहते हैं, जिसका प्रकृतमें अर्थ कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका विनाश होता है ।

शंका--कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके घातका अभी तक कथन नहीं किया है, अथवा, उसका अधिकार भी नहीं है, इसलिये यहां पर कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका घात विवक्षित है, यह कैसे जाना जाय ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, प्रकरणके वशसे यह जान जाता है कि केवलिसमुद्धातमें कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका घात विवक्षित है ।

उत्तरोत्तर होनेवाले घातको उद्धात कहते हैं, और समीचीन उद्धातको समुद्धात कहते हैं ।

घातेभ्योऽस्यैकसमयिकस्य समीचीनत्वाविरोधात् । समुद्धातं गताः समुद्धातगताः । कथमेकस्मिन् गम्यगमकभावश्चेन्न, पर्यायपर्यायिणां कथंचिद् भेदविवक्षायां तदविरोधात् । तेषां समुद्धातगतानां केवलानां कार्मणकाययोगो भवेत् । वा शब्दः समुच्चय प्रतिपादकः ।

अथ स्यात्केवलानां समुद्धातः १ (वेदनीयस्य बहुत्वादल्पत्वाच्चायुषो नाभोगपूर्वकमायुःसमकरणार्थं द्रव्यस्वभावत्वात् सुराद्रव्यस्य फेनवेगवुदवुदाविर्भावोपशमनवद्देहस्थात्मप्रदेशानां बहिः समुद्धातनं केवलिसमुद्धातः । त. रा. वा. पृ. ५३.) सहेतुको निर्हेतुको वा? न द्वितीयविकल्पः, सर्वेषां समुद्धातगमनपूर्वकं मुक्तिप्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, लोकव्यापिनां केवलानां विंशतिसंख्यावर्षपृथक्त्वानन्तरनियमानुपपत्तेः । न प्रथमपक्षोऽपि, तद्धेत्वनुपलम्भात् । न

-----

शंका--इस घातमें समीचीनता है, यह कैसे संभव है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, बहुत कालमें संपन्न होनेवाले घातोसे एक समयमें होनेवाले इस घातमें समीचीनताके मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

समुद्धातको प्राप्त जीवोंको समुद्धातगत जीव कहते हैं ।

शंका--एक ही पदार्थमें गम्य-गमकभाव कैसे बन सकता है, अर्थात् जब पर्यायीसे पर्याय अभिन्न है, तब केवली समुद्धातको प्राप्त होते हैं, इस प्रकार समुद्धात और केवलीमें गम्य-गमकभाव कैसे बन सकता है?

समाधान--यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, पर्याय और पर्यायीकी कथंचित् भेदविवक्षा होने पर एक ही पदार्थमें गम्य-गमकभाव बन जाता है, इसमें कोई विरोध नहीं आता है ।

उन समुद्धातगत केवलियोंके कार्मणकाययोग होता है । यहां सूत्रमें आया हुआ 'वा' शब्द समुच्चयरूप अर्थका प्रतिपादक है ।

शंका--केवलियोंके समुद्धात सहेतुक होता है या निर्हेतुक ? निर्हेतुक होता है, यह दूसरा विकल्प तो बन नहीं सकता, क्योंकि, ऐसा मानने पर सभी केवलियोंको समुद्धात करनेके अनन्तर ही मोक्ष-प्राप्तिका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । यदि यह कहा जावे कि सभी केवली समुद्धातपूर्वक ही मोक्षको जाते हैं, ऐसा मान लिया जावे इसमें क्या हानि है? सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा मानने पर लोकपूरण

समुद्धात करनेवाले केवलियोंकी वर्ष-पृथक्त्वके अनन्तर वीस संख्या होती है यह नियम नहीं बन सकता है। केवलियोंके

-----  
हंतेर्गमिद्विभ्यात्वात्संप्रदेशानां च बहिरुद्गमनं समुद्धातः। त. रा. वा.पृ. ५३. उद्गमनमुद्धातः, जीवप्रदेशानां विसर्पणमित्यर्थः। समीचीन उद्धातः समुद्धातः, केवलानां समुद्धातः केवलिसमुद्धातः। अघातिकर्मस्थितिसमी करणार्थं केवलजीवप्रदेशानां समयाविरोधेन ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च विसर्पणं केवलिसमुद्धातः। इत्युक्तं भवति। जयध. अ. पृ. १२३८.

तावदघातिकर्मणां स्थित्यायुष्यस्थितेरसमानता हेतुः, क्षीणकषायचरमावस्थायां सर्वकर्मणां समानत्वाभावात् सर्वेषामपि तत्प्रङ्गादिति ।

अत्र प्रतिविधीयते। यतिवृषभोपदेशात्सर्वाघातिकर्मणां क्षीणकषायचरमसमये स्थितेः साम्याभावात्सर्वेऽपि कृतसमुद्धाताः सन्तो निर्वृतिमुपढौकन्ते। येषामाचार्याणां लोकव्यापिकेवल्लिषु विंशतिसंख्यानियमस्तेषां मतेन केचित्समुद्धातयन्ति, केचिन्न समुद्धातयन्ति । के न समुद्धातयन्ति ? येषां संसृतिव्यक्तिः कर्मस्थित्या समाना ते न समुद्धातयन्ति, शेषाः समुद्धातयन्ति । अनिवृत्त्यादिपरिणामेषु समानेषु सत्सु किमिति स्थित्योर्वैषम्यम् ? न, व्यक्तिस्थितिघातहेतुष्वनिवृत्तिः (मु. ष्वनिवृत्त )। परिणामेषु समानेषु सत्सु संसृतेस्तत्समानत्वविरोधात् । संसारविच्छित्ते : किं कारणम् ? द्वादशाङ्गावगमः तत्तीव्रभक्तिः केवलिसमुद्धातोऽनिवृत्तिपरिणामाश्च । न चैते सर्वेषु सम्भवन्ति,

-----  
समुद्धात सहेतुक होता है यह प्रथम पक्ष भी नहीं बनता है, क्योंकि, केवलिसमुद्धातका कोई हेतु नहीं पाया जाता है। यदि यह कहा जावे कि तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितीसे आयुकर्मकी स्थितीकी असमानता ही समुद्धातका कारण है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, क्षीणकषाय गुणस्थानकी चरम अवस्थामें संपूर्ण कर्म समान नहीं होते हैं, इसलिये सभी केवलियोंके समुद्धातका प्रसंग आ जायेगा ।

समाधान--यतिवृषभाचार्यके उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थानके चरम समयमें संपूर्ण अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान नहीं होनेसे सभी केवली समुद्धात करके ही मुक्तिको प्राप्त होते हैं परंतु जिन आचार्योंके मतानुसार लोकपूरण समुद्धात करनेवाले केवलियोंकी वीस संख्याका नियम है, उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्धात करते हैं और कितने नहीं करते हैं ।

शंका--कौनसे केवली समुद्धात नहीं करते हैं ?

समाधान--जिनकी संसार-व्यक्ति अर्थात् संसारमें रहनेका काल वेदनीय आदि तीन कर्मोंकी स्थितीके समान है वे समुद्धात नहीं करते हैं, शेष केवली समुद्धात करते हैं।

शंका--अनिवृत्ति आदि परिणामोंके समान रहने पर संसारव्यक्ति स्थिति और शेष तीन कर्मोंकी स्थितिमें विषमता क्यों रहती है?

समाधान--नहीं, क्योंकि, व्यक्तिस्थितिके घातके कारणभूत अनिवृत्तिरूप परिणामोंके समान रहने पर संसारको उसके अर्थात् तीन कर्मोंकी स्थितीके समान मान लेनेमें विरोध आता है।

शंका--संसारके विच्छेदका क्या कारण है?

समाधान--द्वादशांगका ज्ञान, उनमें तीव्र भक्ति, केवलिसमुद्धात और अनिवृत्तिरूप परिणाम ये सब संसारके विच्छेदके कारण हैं। परंतु ये सब कारण समस्त जीवोंमें संभव नहीं हैं, क्योंकि, दश पूर्व और नौ पूर्वके धारी जीवोंका भी क्षपकश्रेणी पर चढना देखा जाता

श्रेण्यारोहणदर्शनात् । न तत्र संसारसमानकर्मस्थितयः समुद्धातेन विना स्थितिकाण्डकानि अन्तर्मुहूर्तेन निपतनस्वभावानि पल्योपमस्यासंख्येयभागायतानि संख्येयावलिकायतानि च निपातयन्तः आयुःसमानि कर्माणी कुर्वन्ति । अपरे समुद्धातेन समानयन्ति१ (ठिदिसंतकम्मसमकरणत्थं सव्वेसि तेसि कम्माणं । अंतोमुहुत्तसेसे जंति समुग्घादमाउम्मि<sup>६</sup> उल्लं संतं वत्थं विरल्लिदं जह लहुं विणिव्वाइ । संवेढियं तु ण तधा तधेव कम्मं पि णादव्वं<sup>६</sup> मूलारा । २१०८, २१०९. जह उल्ला साडीया आसुं सुक्कइ विरेल्लिया संती । तह कम्मलहुसमए वच्चंति जिणा समुग्घायं<sup>६</sup> वि. भा. ३६५०.) । न चैष संसारघातः केवलिनि प्राक् सम्भवति, स्थितिकाण्डघात-वत्समानपरिणामत्वात् । परिणामातिशयाभावे पश्चादपि मा भूत्तद्धात इति चेन्न, वीतरागपरिणामेषु समानेषु सत्स्वन्येभ्योऽन्तर्मुहूर्तायुरपेक्ष्य आत्मनः समुत्पन्नेभ्यस्तद्धा-तोपपत्तेः । अन्यैराचार्यैरव्याख्यातमिममर्थं भणन्तः कथं न सूत्रप्रत्यनीकाः सूत्रप्रत्यनीकाः ? न, वर्षपृथक्त्वान्तरसूत्रवशवर्तिनां तद्विरोधात् ।

छम्मासाउवसेसे उप्पणं जस्स केवलं णाणं ।

स-समुग्धाओ सिज्झइ सेसा भज्जा समुग्घाए २(प्रा. पं. १, २००। उक्कस्सएण छम्मासाउगसेसम्मि केवली जादा । वच्चंति समुग्घादं सेसा )<sup>१६७</sup>

है। अतः वहां पर संसार व्यक्तिके समान कर्मस्थिति नहीं पाई जाती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे निपतन स्वभाववाले ऐसे पत्न्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण या संख्यात आवली प्रमाण स्थिति काण्डकोंका निपतन करते हुए कितने ही जीव समुद्धातके विना ही आयुके समान शेष कर्मोंको लेते हैं। तथा कितने ही जीव समुद्धातके द्वारा शेष कर्मोंको आयुकर्मके समान करते हैं। परंतु यह संसारका घात केवलीमें संभव नहीं है, क्योंकि, पहले स्थितिकाण्डकके घातके समान सभी जीवोंके समान परिणाम पाये जाते हैं।

शंका--जब कि परिणामोंमें कोई अतिशय नहीं पाया जाता है, अर्थात् सभी केवलियोंके परिणाम समान होते हैं तो पीछे भी संसारका घात मत होओ ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, वीतररागरूप परिणामोंके समान रहने पर भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकर्मकी अपेक्षासे आत्माके उत्पन्न हुए अन्य विशिष्ट परिणामोंसे संसारका घात बन जाता है।

शंका--अन्य आचार्योंके द्वारा नहीं व्याख्यान किये गये इस अर्थका इस प्रकार व्याख्यान करनेवाले आचार्य सूत्रके विरुद्ध जा रहे हैं, ऐसा क्यों न माना जाय ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरालका प्रतिपादन करनेवाले सूत्रके वशवर्ती आचार्योंका ही पूर्वोक्त कथनसे विरोध आता है।

शंका--छह माह प्रमाण आयुकर्मके शेष रहने पर जिस जीवको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह समुद्धातको करके ही मुक्त होता है। शेष जीव समुद्धात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं<sup>१६७</sup>

एदिस्से गाहाए उवएसो किण्ण गहिओ ? ण, भज्जत्ते कारणाणुवलंभादो ।

जेसिं आउ-समाइं णामा गोदाणि वेयणीयं च ।

ते अकय-समुग्घाया वच्चंतियरे समुग्घाए १(मूलारा. २१०६. परं च तत्र चतुर्थचरणे पाठभेदोऽयम्-‘जिणा उवणमंति सेलेसिं’। जेसिं हवंति विसमाणि णामगोदाइं वेदणीयाणि । ते अकदसमुग्घादा जिणा उवणमंति सेलेसिं<sup>१६८</sup>मूलारा. २१०७.)<sup>१६८</sup>

णेदं भज्जते कारणम् , सब्व- जीवेसु समेहि अणियट्टि - परिणामेहि पत्त घादाणं ट्टिदीणमाउ - समाणत्त -विरोहादो, अघाइ-तियस्स खीण-कसाय-चरिम-समए जहण्ण-ट्टिदिसंतस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग- पमाणत्तुवलंभादो । नागमस्तर्कगोचर इति चेन्न, एतयोर्गाथयोरागमत्वेन निर्णयाभावाद् । भावे वास्तु गाथयोरेवोपादानम् ।

इदानीं काययोगस्याध्वानज्ञापनार्थमुत्तरसूत्रचतुष्टयमाह --

इस गाथाका उपदेश क्यों नहीं ग्रहण किया है? .

समाधान--नहीं, क्योंकि, इस प्रकार विकल्पके माननेमें कोई कारण नहीं पाया जाता है, इसलिये पूर्वोक्त गाथाका उपदेश नहीं ग्रहण किया है।

जिन जीवोंके नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मकी स्थिति आयुर्कर्मके समान होती है वे समुद्धात नहीं करकेही मुक्तिको प्राप्त होते हैं। दूसरे जीव समुद्धात करकेही मुक्त होते हैं<sup>१६८</sup>

इस प्रकार पूर्वोक्त गाथामें कहे गये अभिप्रायको तो किन्हीं जीवोंके समुद्धात होनेमें और किन्हीं जीवोंके समुद्धातके नहीं होनेमें कारण कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि, संपूर्ण जीवोंमें समान अनिवत्तिरूप परिणामोंके द्वारा कर्मस्थितियोंका घात पाया जाता है , अतः उनका आयुके समान होनेमें विरोध आता है। दूसरे, क्षीणकषाय गुणस्थानके चरम समयमें तीन अघातिया कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व पत्योपमके असंख्यातवें भाग सभी जीवोंके पाया जाता है, इसलिये भी पूर्वोक्त अर्थ ठीक प्रतीत नहीं होता है।

शंका--आगम तो तर्कका विषय नहीं है, इसलिये इस प्रकार तर्कके बलसे पूर्वोक्त गाथाओंके अभिप्रायका खण्डन करना उचित नहीं है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, इन दोनों गाथाओंका आगमरूपसे निर्णय नहीं हुआ है। अथवा, यदि इन दोनों गाथाओंका आगमरूपसे निर्णय हो जानेपर इनका ही ग्रहण रहा आवे ।

अब काययोगका गुणस्थानोंमें ज्ञान कराने के लिये आगेके चार सूत्र कहते हैं

भज्जा समुग्घादे<sup>६</sup> मूलारा . २१०५. षण्मासायुषि स्यादुत्पन्नं यस्य केवलम् । समुद्धातमसौ यति केवली  
नापरः पुनः<sup>६</sup> पंचसं. ३२७. षण्मासाधिकायुष्को लभते केवलोद्गमम् । करोत्यसौ समुद्धातमन्ये कुर्वन्ति वा  
न वा<sup>६</sup> गुण. क्र. प्र. ९४.

कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो एइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति  
१(ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगो ति । तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणटाणेसु णियमेण<sup>६</sup> गो. जी.  
६८०.)<sup>६९</sup>

काययोग एवेत्यवधारणाभावान्न वाङ्मानसयो २(मु. मनसो।) रभावः । एवं शेषाणामपि  
वाच्यमिति । एकेन्द्रियप्रभृत्यासयोगकेवलिनः औदारिकमिश्रकाययोगिनः इति प्रतिपाद्यमाने  
देशविरतादिक्षीणकषायान्तानामपि तदस्तित्वं प्राप्नुयादिति चेन्न, प्रभृतिशब्दोऽयं व्यवस्थायां प्रकारे च  
वर्तते । अत्र प्रभृतिशब्दः प्रकारे परिगृह्यते, यथा सिंहप्रभृतयो मृगा इति। ततो न तेषां ग्रहणम् ।  
व्यस्थावाचिनोऽपि ग्रहणे न दोषः, ‘ओरालिय -मिस्स कायजोगो अपज्जत्ताण ३ (जी. सं. सू. ७६.)७६.)’  
ति बाधकसूत्रसम्भवाद्वा ।

वैक्रियिककाययोगाधिपतिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सण्णिमिच्छाइड्ढि- प्पहुडि जाव असंजदसम्माइड्ढि ति  
४ (वेगुवं पज्जत्ते इदरे खलू होदि तस्स मिस्सं तु। सुरणीरयचउट्टाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु<sup>६</sup>गो. जी.  
६८२.)<sup>६२</sup>

सामान्यसे काययोग और विशेषकी अपेक्षा औदारिक काययोग और औदारिकमिश्र काययोग  
एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं<sup>६९</sup>

काययोग ही होता है, इस प्रकार अवधारण नहीं होनेसे पूर्वोक्त गुणस्थानोंमें वचनयोग और  
मनोयोगका अभाव नहीं समझना चाहिये । इसी प्रकार शेष योगोंका कथन करना चाहिये ।

शंका--एकेन्द्रियसे लेकर सयोगिकेवलीतक औदारिकमिश्रकाययोगी होते हैं ऐसा कथन करने पर  
देशविरत आदि क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थानोंमें औदारिकमिश्रयोगका सद्भाव प्राप्त हो जायगा?

समाधान--नहीं, क्योंकि, यह प्रभृति शब्द व्यवस्था और प्रकाररूप अर्थमें रहता है। उनमेंसे यहां  
पर प्रभृति शब्द प्रकाररूप अर्थमें ग्रहण किया गया है। जैसे, सिंह प्रभृति मृग हैं। इसलिये  
औदारिकमिश्रयोगमें देशविरत आदि क्षीणकषायतकके गुणस्थानोंका ग्रहण नहीं होता है। अथवा,

व्यवस्थावाची भी प्रभृति शब्दके ग्रहण करने पर कोई दोष नहीं आता है। अथवा, 'ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं' अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है, इस बाधक सूत्रके संभव होनेके कारण भी पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

अब वैक्रियककाययोगके स्वामिका प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं---

वैक्रियककाययोग और वैक्रियकमिश्रकाययोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत-सम्यग्दृष्टिक होते हैं<sup>६२</sup>

आत्र 'च' शब्दः कर्तव्योऽन्यथा समुच्चयावगमानुपपत्तेरिति ? न, च शब्द मन्तरेणापि समुच्चयार्थावगते ;, यथा पृथिव्यप्तेजोवायुरित्यत्र । सम्यङ्मिथ्यादृष्टेरपि वैक्रियकमिश्रकाययोग : प्राप्नुयादिति चेन्न, उक्तोत्तरत्वात् । 'सम्मामिच्छाङ्घ्रि-द्वाणे णियमा पज्जत्ता१ (जी. सं. सू. ८३.), वेउब्बिय मिस्स कायजोगो अपज्जत्ताणं:' इत्याभ्यां वा सूत्राभ्या मवसीयते यथा न सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्वैक्रियकमिश्रकाययोग : समस्तीति ।

आहारकाययोगस्वामिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो एक्कमिह चैव पमत्त संजद-द्वाणे २(आहारो पज्जत्तो इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु । अंतोमुहुत्त काले छट्ठगुणे होदि आहारो<sup>६३</sup> गो. जी. ६८३.)<sup>६३</sup>

अप्रमादिनां संयतानां किमित्याहारकाययोगो न भवेदिति चेन्न, तत्र तदुत्थापने निमित्ताभावात्<sup>६४</sup> तदुत्थापने किंनिमित्तमिति चेदाज्ञाकनिष्ठतायाः समुत्पन्नप्रमादः

शंका--इस सूत्रमें च शब्द और अधिक जोड़ देना चाहिये, अन्यथा समुच्चयरु प अर्थका ज्ञान नहीं हो सकेगा?

समाधान--नहीं, क्योंकि, च शब्दके विना भी समुच्चयरु प अर्थका ज्ञान हो जाता है । जैसे, 'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ' इस सूत्रमें च शब्दके नहीं रहने पर भी समुच्चयरु प अर्थका ज्ञान हो जाता है ।

शंका--सूत्रके कथनानुसार सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवालेके भी वैक्रियिकमिश्रकाय योगका सभ्दाव प्राप्त होता है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, इसका उत्तर औदारिकमिश्रकाययोग प्रकरणमें दे आये हैं। अर्थात् यहां पर प्रभृति शब्द व्यवस्था या प्रकारवाची होनेसे पूर्वोक्त दोष नहीं आता है। अथवा, 'सम्मामिच्छाइट्टिटाणे णियमा पज्जत्ता' 'वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं' अर्थात् 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जीव नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं, अथवा, वैक्रियिकमिश्र काययोग अपर्याप्तकोंके ही होता है, इन दोनों सूत्रोंसे भी जाना जाता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके वैक्रियिक मिश्रकाययोग नहीं पाया जाता है।

आहारककाययोगके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग एक प्रमत्त संयत गुणस्थानमें ही होते हैं<sup>६३</sup>

शंका--प्रमाकरहित संयतोंके आहारककाययोग क्यों नहीं होता है?

समाधान-- प्रमादरहित जीवोंके आहारककाययोग उत्पन्न करानेमें निमित्त-कारणका अभाव है।

शंका-- आहारककाययोगके उत्पन्न करानेमें निमित्तकारण क्या है?

-----

असंयमबहुलतोत्पन्नप्रमादश्च । न च प्रमादनिबन्धनोऽमादिनि भवेदतिप्रसङ्गात् । अथवा स्वभावोऽयं यदाहरकाययोग : प्रमादिनामेवोपजायते, नाप्रमादिनामिति ।

कर्मणकाययोगाधारजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

कम्मइयकायजोगो एइंदिय प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति १ (ओरालियमिस्सं वा चउगुणद्वाणेसु होदि कम्मइयं । चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स पदलोगपूरणगे<sup>६४</sup> गो. जी. ६८४.)<sup>६४</sup>

देशविरतादिक्षीणकषायान्तानामपि कर्मणकाययोगस्यास्तित्वं प्राप्नोत्यस्मा त्सूत्रादिति चेन्न, 'संजदासंजद- संजदद्वाणे णियमा पज्जत्ता २ (जी, सं. सू. ९०. मु. संजदासंजदद्वाणे णियमा पज्जत्ता । )' इत्येतस्मात्सूत्रात्तत्र तदभावावगते : । न च समुद्घातादृते पर्याप्तानां कर्मणकाययोगोऽस्ति । किमिति स तत्र नास्तीति चेत् ? विग्रहगतेरभावात् । देवविद्याधरादीनां पर्याप्तानामपि वक्र गतिरुपलभ्यते चेन्न, पूर्वशरीरं परित्यज्योत्तरमादातुं व्रजतो वक्रगतेर्विवक्षितत्वात् ।

-----

समाधान--आज्ञाकनिष्ठता अर्थात् आप्तवचनमें सन्देहजनित शिथिलताके होनेसे उत्पन्न हुआ प्रमाद और असंयमकी बहुलतासे उत्पन्न प्रमाद आहारककायकी उत्पत्तिका निमित्त-कारण है। जो कार्य प्रमादके निमित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रमादरहित जीवमें नहीं हो सकता है अन्यथा अतिप्रसङ्ग दोष आता है। अथवा, यह स्वभाव ही है कि आहारककाययोग प्रमत्त गणस्थानवालोंके ही होता है, प्रमादरहित जीवोंके नहीं।

अब कार्मणकाययोगके आधारभूत जीवोंके प्रतिपादनार्थ आगेका सूत्र कहते हैं---

कार्मणकाययोग एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर सयोगि केवली तक होता है<sup>६४</sup>

शंका--इस सूत्रके कथनसे देशविरत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानतक भी कार्मणकाययोगका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, 'संजदासंजद-संजदटटाणे णियमा पज्जत्ता' अर्थात् संयतासंयत और संयत गुणस्थानमें जीव नियमसे पर्याप्त होते हैं, इस सूत्रके अनुसार यहां पर कार्मणकाययोगका अभाव इ पात हो जाता है<sup>६५</sup> दूसरे समुद्धातको छोड़कर पर्याप्तक जीवोंके कार्मणकाययोग नहीं पया जाता है।

शंका--पर्याप्त जीवोंमें कार्मणकाययोग क्यों नहीं होता है ?

समाधान--विग्रहगतिका अभाव होनेसे उनके कार्मणकाययोग नहीं होता है।

शंका --देव और विद्याधर आदि पर्याप्तक जीवोंके भी वक्रगति पाई जाती है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पूर्व शरीरको छोड़कर आगेके शरीरको ग्रहण करनेकेलिये जाते हुए जीवके जो एक, दो या तीन मोड़ेवाली गति होती है, वही गति यहां पर वक्रगतिरूपसे विवक्षित है।

-----

योगत्रयस्य स्वामिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

मणजोगो वचिजोगो कायजोगो सण्णिमिच्छाङ्गिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति १ (योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । स.सि. १. ८. मज्झिमचउमणयणे सण्णि - प्पहुदिं दु जाव खीणो त्ति । सेसाणं जोगि त्ति व अणुभयवयणं तु वियलादो<sup>६५</sup>गो. ६७९.)<sup>६५</sup>

चतुर्णां मनसां सामान्यं मनः, तज्जनितवीर्येण परिस्पन्दलक्षणेन योगो मनोयोगः। चतुर्णां वचसां सामान्यं वचः, तज्जनितवीर्येणात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणेन योगो वाग्योगः। सप्तानां कायानां कायः, तेन

जनितेन वीर्येण जीवप्रदेश- परिस्पन्दलक्षणेन योग : काययोग : । एते त्रयोऽपि योगाः क्षयोपशमापेक्षया त्र्यात्मकैक रू पमापन्नाः संज्ञिमिथ्यादृष्टेरारभ्य आ सयोगकेवलिन इति क्रमेण सम्भवापेक्षया वा स्वामित्वमुक्तम् । काययोग एकेन्द्रियेष्वप्यस्तीति चेन्न, वाङ्मनोभ्यामविनाभाविनः काययोगस्य विवक्षितत्वात् । तथा वचसोऽप्यभिधातव्यम् ।

-----  
अब तीन योगोंके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

मनोयोग , वचनयोग और काययोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक होते हैं<sup>६५</sup>

सत्यादि चार प्रकारके मनमें जो अन्वयरू पसे रहता है उसे सामान्य मन कहते हैं । उस मनसे उत्पन्न हुए परिस्पन्द-लक्षण वीर्यके द्वारा जो योग होता है उसे मनोयोग कहते हैं । चार प्रकारके वचनोंमें जो अन्वयरू पसे रहता है उसे सामान्य वचन कहते हैं । उस वचनसे उत्पन्न हुए आत्मप्रदेश-परिस्पन्द-लक्षण वीर्यके द्वारा जो योग होता है उसे वचनयोग कहते हैं । सात प्रकारके कायोंमें जो अन्वयरू पसे रहता है उसे सामान्य काय कहते हैं । उस कायसे उत्पन्न हुए आत्मप्रदेश परिस्पन्द लक्षण वीर्यके द्वारा जो योग होता है उसे काययोग कहते हैं । ये योग तीन होते हुए भी क्षयोपशमकी अपेक्षा त्र्यात्मक एकरू पताको प्राप्त होकर संज्ञा मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं । अथवा क्रमसे संभव होनेकी अपेक्षा स्वामित्वका प्रतिपादन किया ।

शंका--काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके भी होता है, फिर यहां उसका संज्ञी पंचेन्द्रियसे कथन क्यों किया ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, यहां पर वचनयोग और मनोयोगसे अविनाभाव रखनेवाले काययोगकी विवक्षा है । इसी प्रकार वचनयोगका भी कथन करना चाहिये । अर्थात्, यद्यपि वचनयोग द्वीन्द्रिय जीवोंसे होता है, फिर भी यहां पर मनोयोगका अविनाभावी वचनयोग विवक्षित है, इसलिये उसका भी संज्ञी कथन किया ।

-----  
द्विसंयोगप्रतिपादनार्थमूत्रमाह--

वचिजोगो कायजोगो बीइंदिय प्पहुडि जाव असण्णिपंचिदिया ति<sup>६६</sup>

अत्र सामान्यवाक्काययोर्विवक्षितत्वात् द्वीन्द्रियादिर्भवत्यसंज्ञिनश्च पर्यवसानम् । विशेषे तु पुनरवलम्ब्यमाने तुरीयस्यैव वचसः सत्त्वमिति । तदाद्यन्तव्यवहारो न घटामटेत्, उपरिष्ठादपि वाक्काययोगौ विद्येते ततो नासंज्ञिनः पर्यवसानमिति चेन्न, उपरि त्रयाणामपि सत्त्वात् अस्तु चेन्न, निरुद्धद्विसंयोगस्य त्रिसंयोगेन सह विरोधात् ।

एकसंयोगप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह

कायजोगो एङ्दियाणं<sup>६७</sup>

एकेन्द्रियाणामेकः काययोग एव, द्वीन्द्रियादीनामसंज्ञिपर्यन्तानां वाकाययोगौ द्वावेव, शेषास्त्रियोगाः ।

-----

अब द्विसंयोगी योगोंके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं--

वचनयोग और काययोग द्वीन्द्रिय जीवोंसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों तक होते हैं<sup>६६</sup>

यहां पर सामान्य वचन और काययोगकी विवक्षा होनेसे द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक सामान्यसे दोनों योग पाये जाते हैं । किंतु विशेषके अवलम्बन करने पर तो द्वीन्द्रियसे असंज्ञीतक वचनयोगके चौथे भेद (अनुभववचन) का ही सत्त्व समझना चाहिये ।

शंका--इन दोनों योगोंका द्वीन्द्रियसे आदि लेकर असंज्ञीपर्यन्त जो सद्भाव बताया है, यह आदि और अन्तका व्यवहार यहां पर घटित नहीं होता है, क्योंकि, इन जीवोंसे आगेके जीवोंके भी वचन और काययोग पाये जाते हैं । इसलिये असंज्ञीतक ये योग होते हैं, यह बात नहीं बनती है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, आगेके जीवोंके तीनों योगोंका सत्त्व पाया जाता है ।

शंका--यदि ऊपर तीन योगोंका सत्त्व है तो रहा आवे, फिर भी इन दो योगोंके कथन करनेमें क्या हानि है?

समाधान--नहीं, क्योंकि, विवक्षित द्विसंयोगका त्रिसंयोगके साथ कथन करनेमें विरोध आता है । इसलिये द्विसंयोगी योगका असंज्ञीतक ही कथन किया है ।

अब एक संयोगी योगके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं--

काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके होता है<sup>६७</sup>

एकेन्द्रिय जीवोंके एक काययोग ही होता है । द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञीतक जीवोंके वचन और कय ये दो योग होते हैं । तथा, शेष जीवोंके तीनों ही योग होते हैं ।

प्राक् सामान्येन योगस्य सत्त्वमभिधायेदानीं व्यवच्छेद्येऽमुष्मिन् कालेऽस्य सत्त्वममुष्मिंश्च न सत्त्वमिति प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

मणजोगो वचिजोगो पज्जत्ताणं अत्थि , अपज्जत्ताणं णात्थि<sup>६८</sup>

क्षयोपशमापेक्षया अपर्याप्तकालेऽपि तयोः सत्त्व न विरोधमास्कन्देदिति चेन्न, वाङ्मनोभ्यामनिष्पन्नस्य तद्योगानुपपत्तेः । पर्याप्तानामपि विरुद्धयोगमध्यासितावस्थायां नास्त्येवेति चेन्न, सम्भवापेक्षया तत्र तत्सत्त्वप्रतिपादनात्, तच्छक्तिसत्त्वापेक्षया वा । सर्वत्र समुच्चयार्थावद्योतक-च-शब्दाभावेऽपि समुच्चयार्थः पदैरेवावद्योत्यत इत्यवसेयः ।

काययोगसामान्यस्य सत्त्वप्रदेशप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि, अपज्जत्ताण वि अत्थि<sup>६९</sup>

पहले सामान्यसे योगका सत्त्व कहकर, अब व्यवच्छेद योग्य इस कालमें इस योगका सत्त्व है, और इस कालमें इस योगका सत्त्व नहीं है, इस बातके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं--

मनोयोग और वचनयोग पर्याप्तकोंकेही होते हैं, अपर्याप्तकोंकेनहीं होते<sup>६८</sup>

शंका--क्षयोपशमकी अपेक्षा अपर्याप्त कालमें भी वचनयोग और मनोयोगका पाया जाना विरोधको प्राप्त नहीं होता है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, जो क्षयोपशम वचनयोग और मनोयोगरूपसे उत्पन्न नहीं हुआ है, उसे योग संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती है ।

शंका--पर्याप्तक जीवोंकेभी विरुद्ध योगको प्राप्त होनेरूप अवस्थाकेहोने पर विवक्षित योग नहीं पाया जाता है ?

विशेषार्थ--शंकाकारका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार अपर्याप्त अवस्थामें मनोयोग और वचनयोगका अभाव बतलाया गया है, उसी प्रकार पर्याप्त अवस्थामें भी किसी एक योगके रहने पर शेष दो योगोंका अभाव रहता है, इसलिये उस समय भी उन दो योगोंकेअभावका कथन करना चाहिये ।

समाधान--नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें किसी एक योगके रहने पर शेष योग संभव हैं, इसलिये इस अपेक्षासे वहां पर उनके अस्तित्वका कथन किया जाता है । अथवा, उस समय वे योग शक्तिरूपसे विद्यमान रहते हैं, इसलिये इस अपेक्षासे उनका अस्तित्व कहा जाता है ।

इन सभी सूत्रोंमें समुच्चयरूप अर्थको प्रगट करनेवाला च शब्द नहीं होने पर भी सूत्रोक्त पदोंसे ही समुच्चयरूप अर्थ प्रगट हो जाता है, ऐसा समझ लेना चाहिये।

अब सामान्य काययोगकी सत्ताकेसत्ताकेप्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं--  
काययोग पर्याप्तकोंकेभी होता है, और अपर्याप्तकोंके भी होता है<sup>६९</sup>

‘अपि’ शब्दः समुच्चयार्थे द्रष्टव्यः। कः समुच्चयः? एकस्य निर्दिष्टप्रदेशद्विप्रभृतेरुपनिपातः समुच्चयः। द्विरस्ति शब्दोपादानमनर्थकमिति चेन्न, विस्तररुचिसत्त्वानुग्रहार्थत्वात् । संक्षेपरुचयो नानुग्रहीताश्चेन्न, विस्तररुचिसत्त्वानुग्रहस्य संक्षेपरुचिसत्त्वानुग्रहाविनाभावित्वात् ।

पर्याप्तस्यैव एते योगाः भवन्ति, एते चोभयोरिति वचनमाकर्ण्य पर्याप्तविषयजातसंशयस्य शिष्यस्य सन्देहापोहनार्थमुत्तरसूत्राण्यभाषीत्

छ पज्जत्तीओ , छ अपज्जत्तीओ<sup>७०</sup>

पर्याप्तिनिःशेषलक्षणोपलक्षणार्थं तत्संख्यामेव प्रागाह । आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासभाषामनसां निष्पत्तिः पर्याप्तिः१ ( उत्पत्तिदेशमागतेन प्रथमं ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां तथान्येषामऽपि प्रतिसमयं गृह्यमाणानां तत्सम्पर्कस्तद्रूपतया जातानां यः शक्तिविशेष आहारादिपुद्गलखलरसरूपतापादनहेतुर्यथोदरान्तर्गतानां पुद्गलिविशेषाणामाहारपुद्गलखलरसरूपतापरिणमनहेतुः सा पर्याप्तिः । जी. १ प्रति. (अभि . रा. को., पज्जत्ति)<sup>१</sup> । ताश्च षट् भवन्ति-आहारपर्याप्ति

सूत्रमें जो अपि शब्द आया है वह समुच्चयार्थक जानना चाहिये।

शंका--समुच्चय किसे कहते हैं ?

समाधान--किसी एक शब्दकेनिर्दिष्ट स्थानमें दो आदि बार प्राप्त होनेको समुच्चय कहते हैं।

शंका--सूत्रमें दो बार अस्ति शब्दका ग्रहण करना निरर्थक है?

समाधान--नहीं, क्योंकि, विस्तारसे समझनेकी रुचि रखनेवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये सूत्रमें दो बार अस्ति पदका ग्रहण किया।

शंका--तो इस सूत्रमें संक्षेपसे समझनेकी रुचि रखनेवाले शिष्य अनुग्रहीत नहीं किये गये ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, विस्तारसे समझनेकी रुचि रखनेवाले जीवोंका अनुग्रह संक्षेपसे

समझनेकी रुचि रखनेवाले जीवोंके अनुग्रहका अविनाभावी है। अर्थात्, विस्तारसे विस्तारसे कथन कर देने पर संक्षेपरुचि शिष्योंका काम चल ही जाता है, इसलिये यहां पर विस्तारसे कथन किया है।

ये योग पर्याप्तकके ही होते हैं और ये योग दोनोंके होते हैं, इस वचनको सुनकर जिन शिष्योंके पर्याप्तिके विषयमें संशय उत्पन्न हो गया है, उनकेसंदेहको दूर करनेकेलिये आगेका सूत्र कहा गया है  
छह पर्याप्तियां और छह अपर्याप्तियां होती हैं<sup>७०</sup>

पर्याप्तियोंके संपूर्ण लक्षणको बतलानेकेलिये उनकी संख्या ही पहले कही गई है। आहार, शरीर, इन्द्रिय उच्छ्वासनिःश्वास भाषा और मन, इनकी निष्पत्तिको पर्याप्ति कहते हैं। वे पर्याप्तियां छह होती हैं-  
आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनापान-

शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः आनापानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनः  
पर्याप्तिरिति। एतासामेवानिष्पत्तिरपर्याप्तिः। ताश्च षड् भवन्ति-आहारापर्याप्तिः शरीरापर्याप्तिः  
इन्द्रियापर्याप्तिः आनापानापर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनोऽपर्याप्तिरिति। एतासां द्वादशानामपि पर्याप्तीनां  
स्वरूपं प्रागुक्तमिति पौनरुक्तिभयादिह नोच्यते।

इदानीं तासामाधारप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमवोचत्

सण्णमिच्छाङ्घ्रि-प्पहुडि जाव असंजदसम्माङ्घ्रि त्ति<sup>७१</sup>

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि षडपर्याप्तयो १ (मु. षट् पर्याप्तयो)। भवन्तीति चेन्न, तत्र गुणेऽपर्याप्तकालाभावात् देशविरताद्युपरितनगुणानां किमिति षट् पर्याप्तयो न सन्तीति चेन्न, पर्याप्तिर्नाम षण्णां पर्याप्तीनां समाप्तिः, न सोपरितनगुणेष्वस्ति अपर्याप्तिचरमावस्थायामैकसमयिक्या उपरि सत्त्वविरोधात् षट्पर्याप्तिश्रवणात् षडेव पर्याप्तयः सन्तीति समुत्पन्नप्रत्ययस्य शिष्यस्याव -  
धारणात्मकप्रत्ययनिराकरणार्थमुत्तर- सूत्रमवोचत्

पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। इन छह पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको ही अपर्याप्ति कहते हैं। अपर्याप्तियां भी छह ही होती हैं-आहार-अपर्याप्ति, शरीर-अपर्याप्ति, इन्द्रिय-अपर्याप्ति, आनापान अपर्याप्ति, भाषा-अपर्याप्ति और मन- अपर्याप्ति। इन बारह पर्याप्तियोंका स्वरूप पहले कह आये हैं, इसलिये पुनरुक्ति दूषणके भयसे उनका स्वरूप फिरसे यहां नहीं कहते हैं।

अब उन पर्याप्तियोंकेआधारको बतलानेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ।

ये सभी पर्याप्तियां संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक होती हैं<sup>७२</sup>

शंका--सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवालोंकेभी छह अपर्याप्तियां होती हैं ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, उस गुणस्थानमें अपर्याप्त काल नहीं पाया जाता है ।

शंका--देशाविरतादिक ऊपरकेगुणस्थानवालोंकेछह पर्याप्तियां क्यों नहीं होती हैं?

समाधान--नहीं, क्योंकि, छह पर्याप्तियोंकी समाप्तिका नाम ही पर्याप्ति है और यह समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही पांचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें नहीं पायी जाती , क्योंकि, अपर्याप्तिकी अन्तिम अवस्थावर्ती एक समयमें पूर्ण हो जानेवाली पर्याप्तिकी आगेकेगुणस्थानोंमें सत्त्व होनेमें विरोध आता है ।

छह पर्याप्तियोंके सुननेसे जिस शिष्यको यह निश्चय हो गया कि पर्याप्तियां छह ही होती हैं, हीनाधिक नहीं ,उस शिष्यकेऐसे धारणारूप निश्चयको दूर करनेकेलिये आगेका सूत्र कहा है---

पंच पञ्जतीओ पंच अपञ्जतीओ<sup>७२</sup>

पर्याप्तीनामपर्याप्तीनां च लक्षणमभाणीति नेदानीं भण्यते ।षण्णां पर्याप्तीनामन्तः पञ्चापि सन्तीति पृथक्पर्याप्तिपञ्चकोपदेशोऽनर्थक इति चेन्न, क्वचिज्जीव विशेषे षडेव पर्याप्तयो भवन्ति, क्वचित्पञ्चैव भवन्तीति प्रतिपादनफलत्वात् । काः पञ्च पर्याप्तय इति चेन्ननोवर्जाः शेषाः पञ्च ।

ताः केषां भवन्तीति संशयानस्य शिष्यस्यारेकानिराकरणार्थमुत्तरसूत्रं वक्ष्यति-

बीइंदिय-प्पहुडि जाव असण्णिपंचिदिया त्ति<sup>७३</sup>

विकलेन्द्रियेष्वस्ति मनः, तत्कार्यस्य विज्ञानस्य तत्र सत्त्वान्मनुष्येष्वेवेति न प्रत्यवस्थातुं युक्तम्, तत्रतनस्य विज्ञानस्य तत्कार्यत्वासिद्धेः । मनुष्येषु विज्ञानस्य

पांच पर्याप्तियां और पांच अपर्याप्तियां होती हैं<sup>७२</sup>

पर्याप्तियोंका और अपर्याप्तियोंका लक्षण पहले कह आये हैं, इसलिये अब फिरसे नहीं कहते हैं ।

शंका--पांच पर्याप्तियां छह पर्याप्तियोंके भीतर आ ही जाती हैं, इसलिये अलगरूपसे पांच पर्याप्तियोंका कथन करना निष्फल है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, किन्हीं जीव-विशेषोंमें छहों पर्याप्तियां पाई जाती हैं, और किन्हीं जीवोंमें पांच ही पर्याप्तियां पाई जाती हैं इस बातका प्रतिपादन करना इस सूत्रका फल है।

शंका--वे पांच पर्याप्तियां कौनसी हैं ?

समाधान--मनः पर्याप्तिको छोड़कर शेष पांच पर्याप्तियां यहां पर ली गई हैं।

वे पाँच पर्याप्तियां किनके होती हैं, इस प्रकार संशयापन्न शिष्यकी शंका दूर करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

वे पांच पर्याप्तियां द्वन्द्विय जीवोंसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त होती हैं<sup>७३</sup>

विकलेन्द्रिय जीवोंमें भी मन है, क्योंकि, मनका कार्य जो विज्ञान मनुष्योंमें है वही विकलेन्द्रिय जीवोंमें भी पाया जाता यह बात निश्चय करने योग्य नहीं है, क्योंकि, विकलेन्द्रियोमें रहनेवाला विज्ञान मनका कार्य है, यह बात असिद्ध है।

शंका--मनुष्योंमें जो विशेष ज्ञान होता है वह मनका कार्य है, यह बात तो देखी जाती है?

समाधान--मनुष्योंका विशेष विज्ञान यदि मनका कार्य है तो रहा आवे, क्योंकि,

-----  
तत्कार्यत्वं दृश्यत इति चेदस्तु, क्वचिद् दृष्टत्वात् । मनसः कार्यत्वेन प्रतिपन्नविज्ञानेन सह तत्रतनविज्ञानस्य ज्ञानत्वं प्रत्यविशेषान्मनोनिबन्धनत्वमनुमीयत इति चेन्न, भिन्नजातिस्थितविज्ञानेन सहाविशेषानुपपत्तेः । न प्रत्यक्षेणाप्येष आगमो बाध्यते, तत्र प्रत्यक्षस्य वृत्त्यभावात्<sup>७४</sup> विकलेन्द्रियेषु मनसोऽभावः कुतोऽवसीयत इति चेदार्थात् । कथमार्थस्य प्रामाण्यमिति चेत्स्वाभाव्यात्प्रत्यक्षस्येव ।

पुनरपि पर्याप्तिसंख्यासत्त्वभेदप्रदर्शनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

चत्तारि पञ्जत्तीओ चत्तारि अपञ्जत्तीओ<sup>७४</sup>

केषुचित्प्राणिषु चतस्र एव पर्याप्तयोऽपर्याप्तयो वा भवन्ति । कास्ताश्चतस्र इति चेदाहारशरीरेन्द्रियानापर्याप्तयः इति । शेषं सुगमम् ।

चतुर्णामपि पर्याप्तीनामधिपतिजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

एइंदियाणं<sup>७५</sup>

-----  
वह क्वचित् देखा जाता है।

शंका--मनुष्योंमें मनके कार्यरूपसे स्वीकार किये गये विज्ञानके विज्ञानके साथ विकलेन्द्रियोंमें होनेवाले विज्ञानकी ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं हैं, इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि विकलेन्द्रियोंका विज्ञान भी मनसे होता है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, भिन्न जातीमें स्थित विज्ञानके साथ भिन्न जातीमें स्थित विज्ञानकी समानता नहीं बन सकती है। 'विकलेन्द्रियोंके मन नहीं होता है' यह आगम प्रत्यक्षसे भी बाधित नहीं है, क्योंकि, वहां पर प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है।

शंका--विकलेन्द्रियोंमें मनका अभाव है यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान--आगम प्रमाणसे जाना जाता है कि विकलेन्द्रियोंके मन नहीं होता है।

शंका--आर्षको प्रमाण कैसे माना जाय ?

समाधान--जैसे प्रत्यक्ष स्वभावतः प्रमाण है उसी प्रकार आर्ष भी स्वभावतः प्रमाण है।

फिर भी पर्याप्तियोंकी संख्याके अस्तित्वमें भेद बतानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

चार पर्याप्तियां और चार अपर्याप्तियां होती हैं।

शंका-- वे चार पर्याप्तियां कौनसी हैं ?

समाधान--आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और आनापानपर्याप्ति।

शेष कथन सुगम है।

चारों पर्याप्तियोंके अधिकारी जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं---

उक्त चारों पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीवोंके होती हैं ७५